जब हम किस्से सुनते तो कलेजे उछलकर हलक में फँस जाते और रात को साँपों की फुँकारें सुनकर उठते और चीखें मारने लगते।

गोरी बी ने सारी उम्र कैसे-कैसे नाग खेलाये होंगे, कैसे अकेली नामुराद ज़िन्दगी का बोझ ढोया होगा? उनके रसीले होठों को कभी किसी ने नहीं चूमा। उन्होंने अपने जिस्म की पुकार को क्या जवाब दिया होगा?

अच्छा होता, यह कहानी यहीं खतम हो जाती।

क़िस्मत मुस्करा रही थी।

पूरे चालीस बरस बाद काले मियाँ अचानक आप ही आ धमके। उन्हें किस्म-किस्म की लाइलाज बीमारियाँ लग चुकी थीं। पोर-पोर सड़ रही थी। रोम-रोम रिस रहा था। बदबू के मारे नाक सड़ी जाती थी। मगर आँखों में हसरतें जाग रही थीं, जिनके सहारे जान सीने में अटकी हुई थी।

"गोरी बी से कहो मुश्किल आसान कर जायें।"

एक कम साठ बरस की दुल्हन ने रूठे हुए दूल्हा को मनाने की तैयारियाँ शुरू कर दीं। मेहंदी घोलकर हाथ-पैरों में रचायी। पानी गरम कर के पिंडा पाक किया, सुहाग का चिकटा हुआ तेल सफेद लटों में बसाया। सन्दूक खोल कर भर-भर टपकता-झड़ता शादी का जोड़ा निकाल कर पहना और इधर काले मियाँ दम तोड़ते रहे।

जब गोरी बी शरमाती-लजाती धीरे-धीरे क़दम उठाती उनके सिरहाने पहुँचीं तो झिलँगे पलँग पर चीकट तकिये और गूदड़ बिस्तर पर पड़े हुए काले मियाँ की मुर्दा हड्डियों में ज़िन्दगी की लहर दौड़ गयी। मल्कुलमौत[1] से जूझते हुए काले मियाँ ने हुक्म दिया :

"गोरी बी, घूँघट उठाओ!"

गोरी बी के हाथ उठे, मगर घूँघट तक पहुँचने के पहले गिर गये।

काले मियाँ दम तोड़ चुके थे।

वो बड़े सुकून से उकड़ूँ बैठ गयीं। सुहाग की चूड़ियाँ ठंडी कीं और रँडापे का सफ़ेद आँचल माथे पर खींच लिया।

1. यमदूत

Ismat Chughtā'ī : Pratinidhi kahāniyāñ
New Delhi : Rājkamal Prākashan, 1988

लिहाफ़

जब मैं जाड़ों में लिहाफ़ ओढ़ती हूँ तो पास की दीवार पर उसकी परछाईं हाथी की तरह झूमती हुई मालूम होती है। और एकदम से मेरा दिमाग़ बीती हुई दुनिया के पर्दों में दौड़ने-भागने लगता है। न जाने क्या कुछ याद आने लगता है।

माफ़ कीजियेगा, मैं आपको ख़ुद अपने लिहाफ़ का रूमानअंगेज़ ज़िक्र बताने नहीं जा रही हूँ, न लिहाफ़ से किसी क़िस्म का रूमान जोड़ा ही जा सकता है। मेरे ख़याल में कम्बल कम आरामदेह सही, मगर उसकी परछाईं इतनी भयानक नहीं होती जितनी—जब लिहाफ़ की परछाईं दीवार पर डगमगा रही हो। यह जब का ज़िक्र है, जब मैं छोटी-सी थी और दिन-भर भाइयों और उनके दोस्तों के साथ मार-कुटाई में गुज़ार दिया करती थी। कभी-कभी मुझे ख़याल आता कि मैं कमबख़्त इतनी लड़ाका क्यों थी? उस उम्र में जबकि मेरी और बहनें आशिक़ जमा कर रही थीं, मैं अपने-पराये हर लड़के और लड़की से जूतम-पैजार में मशगूल थी।

यही वजह थी कि अम्माँ जब आगरा जाने लगीं तो हफ़्ता-भर के लिए मुझे अपनी एक मुँहबोली बहन के पास छोड़ गयीं। उनके यहाँ, अम्माँ ख़ूब जानती थीं कि चूहे का बच्चा भी नहीं और मैं किसी से भी लड़-भिड़ न सकूँगी। सज़ा तो ख़ूब थी मेरी! हाँ, तो अम्माँ मुझे बेगम जान के पास छोड़ गयीं। वही बेगम जान जिनका लिहाफ़ अब तक मेरे ज़हन में गर्म लोहे के दाग़ की तरह महफ़ूज़ है। ये वो बेगम जान थीं जिनके गरीब माँ-बाप ने नवाब साहब को इसलिए दामाद बना लिया कि गो वह पकी उम्र के थे मगर निहायत नेक। कभी कोई रण्डी या बाज़ारी औरत उनके यहाँ नज़र न आयी। ख़ुद हाजी थे और बहुतों को हज करा चुके थे।

मगर उन्हें एक निहायत अजीबो-ग़रीब शौक था। लोगों को कबूतर पालने का जुनून होता है, बटेरें लड़ाते हैं, मुर्ग़बाज़ी करते हैं—इस क़िस्म के वाहियात खेलों से नवाब साहब को नफ़रत थी। उनके यहाँ तो बस तालिब इल्म रहते थे। नौजवान, गोरे-गोरे, पतली कमरों के लड़के, जिनका ख़र्च वे ख़ुद बर्दाश्त करते थे।

मगर बेगम जान से शादी करके तो वे उन्हें कुल साज़ो-सामान के साथ ही घर में रखकर भूल गये। और वह बेचारी दुबली-पतली नाज़ुक-सी बेगम तन्हाई के ग़म में घुलने लगीं। न जाने उनकी ज़िन्दगी कहाँ से शुरू होती है? वहाँ से जब वह पैदा होने की ग़लती कर चुकी थीं, या वहाँ से जब वह एक नवाब की बेगम बनकर आयीं और छपरखट पर ज़िन्दगी गुजारने लगीं, या जब से नवाब साहब के यहाँ लड़कों का ज़ोर बँधा। उनके लिए मुर्ग़न हलवे और लज़ीज़ खाने जाने लगे और बेगम जान दीवानख़ाने की दरारों में से उनकी लचकती कमरोंवाले लड़कों की चुस्त पिण्डलियाँ और मोअत्तर बारीक शबनम के कुर्ते देख-देखकर अंगारों पर लोटने लगीं।

या जब से वह मन्नतों-मुरादों से हार गयीं, चिल्ले बँधे और टोटके और रातों की वज़ीफ़ाख़्वानी भी चित हो गयी। कहीं पत्थर में जोंक लगती है! नवाब साहब अपनी जगह से टस-से-मस न हुए। फिर बेगम जान का दिल टूट गया और वह इल्म की तरफ़ मोतवज्जा हुईं। लेकिन यहाँ भी उन्हें कुछ न मिला। इश्क़िया नावेल और जज़्बाती अशआर पढ़कर और भी पस्ती छा गयी। रात की नींद भी हाथ से गयी और बेगम जान जी-जान छोड़कर बिल्कुल ही यासो-हसरत की पोट बन गयीं।

चूल्हे में डाला था ऐसा कपड़ा-लत्ता। कपड़ा पहना जाता है किसी पर रोब गाँठने के लिए। अब न तो नवाब साहब को फ़ुर्सत कि शबनमी कुर्तों को छोड़कर ज़रा इधर तवज्जा करें और न वे उन्हें कहीं आने-जाने देते। जब से बेगम जान ब्याहकर आयी थीं, रिश्तेदार आकर महीनों रहते और चले जाते, मगर वह बेचारी क़ैद की क़ैद रहतीं।

उन रिश्तेदारों को देखकर और भी उनका ख़ून जलता था कि सबके-सब मज़े से माल उड़ाने, उम्दा घी निगलने, जाड़े का साज़ो-सामान बनवाने आन मरते और वह बावजूद नयी रूई के लिहाफ़ के, पड़ी सर्दी में अकड़ा करतीं। हर करवट पर लिहाफ़ नयी-नयी सूरतें बनाकर दीवार पर साया डालता। मगर कोई भी साया ऐसा न था जो उन्हें ज़िन्दा रखने के लिए काफ़ी हो। मगर क्यों जिये फिर कोई? ज़िन्दगी! बेगम जान की ज़िन्दगी जो थी! जीना बदा था नसीबों में, वह फिर जीने लगीं और ख़ूब जीं।

रब्बो ने उन्हें नीचे गिरते-गिरते सँभाल लिया। चटपट देखते-देखते उनका सूखा जिस्म भरना शुरू हुआ। गाल चमक उठे और हुस्न फूट निकला।

एक अजीबो-ग़रीब तेल की मालिश से बेगम जान में ज़िन्दगी की झलक आयी। माफ़ कीजियेगा, उस तेल का नुस्ख़ा आपको बेहतरीन-से-बेहतरीन रिसाले में भी न मिलेगा।

जब मैंने बेगम जान को देखा तो वह चालीस-बयालीस की होंगी। ओफ्फोह! किस शान से वह मसनद पर नीमदराज़ थीं और रब्बो उनकी पीठ से लगी बैठी कमर दबा रही थी। एक ऊदे रंग का दुशाला उनके पैरों पर पड़ा था और वह महारानी की तरह शानदार मालूम हो रही थीं। मुझे उनकी शक्ल बेइन्तहा पसन्द थी। मेरा जी चाहता था, घण्टों बिल्कुल पास से उनकी सूरत देखा करूँ। उनकी रंगत बिल्कुल सफ़ेद थी। नाम को सुर्ख़ी का ज़िक्र नहीं। और बाल स्याह और तेल में डूबे रहते थे। मैंने आज तक उनकी माँग ही बिगड़ी न देखी। क्या मजाल जो एक बाल इधर-उधर हो जाये। उनकी आँखें काली थीं और अबरू पर के ज़ायद बाल अलहदा कर देने से कमानें-सी खिंची होती थीं। आँखें ज़रा तनी हुई रहती थीं। भारी-भारी फूले हुए पपोटे, मोटी-मोटी पलकें। सबसे ज़ियादः जो उनके चेहरे पर हैरतअंगेज़ जाज़िबे-नज़र चीज़ थी, वह उनके होंठ थे। अमूमन वह सुर्ख़ी से रँगे रहते थे। ऊपर के होंठ पर हल्की-हल्की मूँछें-सी थीं और कनपटियों पर लम्बे-लम्बे बाल। कभी-कभी उनका चेहरा देखते-देखते अजीब-सा लगने लगता था—कम उम्र लड़कों-जैसा।

उनके जिस्म की जिल्द भी सफ़ेद और चिकनी थी। मालूम होता था किसी ने कसकर टाँके लगा दिये हों। अमूमन वह अपनी पिण्डलियाँ खुजाने के लिए किसोलतीं तो मैं चुपके-चुपके उनकी चमक देखा करती। उनका क़द बहुत लम्बा था और फिर गोश्त होने की वजह से वह बहुत ही लम्बी-चौड़ी मालूम होती थीं। लेकिन बहुत मुतनासिब और ढला हुआ जिस्म था। बड़े-बड़े चिकने और सफ़ेद हाथ और सुडौल कमर ··· तो रब्बो उनकी पीठ खुजाया करती थी। यानी घण्टों उनकी पीठ खुजाती—पीठ खुजाना भी ज़िन्दगी की ज़रूरियात में से था, बल्कि शायद ज़रूरियाते-ज़िन्दगी से भी ज़्यादा।

रब्बो को घर का और कोई काम न था। बस वह सारे वक़्त उनके छपरखट पर चढ़ी कभी पैर, कभी सिर और कभी जिस्म के और दूसरे हिस्से को दबाया करती थी। कभी तो मेरा दिल बोल उठता था, जब देखो रब्बो कुछ-न-कुछ

दबा रही है या मालिश कर रही है। कोई दूसरा होता तो न जाने क्या होता? मैं अपना कहती हूँ, कोई इतना करे तो मेरा जिस्म तो सड़-गल के ख़त्म हो जाय।

और फिर यह रोज़-रोज़ की मालिश काफ़ी नहीं थी। जिस रोज़ बेगम जान नहातीं, या अल्लाह! बस दो घण्टा पहले से तेल और ख़ुशबूदार उबटनों की मालिश शुरू हो जाती। और इतनी होती कि मेरा तो तख़य्युल से ही दिल लोट जाता। कमरे के दरवाज़े बन्द करके अँगीठियाँ सुलगतीं और चलता मालिश का दौर। अमूमन सिर्फ़ रब्बो ही रहती। बाक़ी की नौकरानियाँ बड़बड़ातीं दरवाज़े पर से ही, ज़रूरियात की चीज़ें देती जातीं।

बात यह थी कि बेगम जान को खुजली का मर्ज़ था। बिचारी को ऐसी खुजली होती थी कि हज़ारों तेल और उबटने मले जाते थे, मगर खुजली थी कि क़ायम। डाक्टर-हकीम कहते, 'कुछ भी नहीं, जिस्म साफ़ चट पड़ा है। हाँ, कोई जिल्द के अन्दर बीमारी हो तो ख़ैर।' 'नहीं भी, ये डाक्टर तो मुये हैं पागल! कोई आपके दुश्मनों को मर्ज़ है? अल्लाह रखे, ख़ून में गर्मी है!' रब्बो मुस्कराकर कहती, महीन-महीन नज़रों से बेगम जान को घूरती! ओह यह रब्बो! जितनी यह बेगम जान गोरी थीं उतनी ही यह काली। जितनी बेगम जान सफ़ेद थीं, उतनी ही यह सुर्ख़। बस जैसे तपाया हुआ लोहा। हल्के-हल्के चेचक के दाग़। गठा हुआ ठोस जिस्म। फुर्तीले छोटे-छोटे हाथ। कसी हुई छोटी-सी तोंद। बड़े-बड़े फूले हुए होंठ, जो हमेशा नमी में डूबे रहते और जिस्म में से अजीब घबरानेवाली बू के शरारे निकलते रहते थे। और ये नन्हें-नन्हें फूले हुए हाथ किस क़दर फुर्तीले थे! अभी कमर पर, तो वह लीजिए फिसलकर गये कूल्हों पर! वहाँ से रपटे रानों पर और फिर दौड़े टखनों की तरफ़! मैं तो जब कभी बेगम जान के पास बैठती, यही देखती कि अब उसके हाथ कहाँ हैं और क्या कर रहे हैं?

गर्मी-जाड़े बेगम जान हैदराबादी जाली कारगे के कुर्ते पहनतीं। गहरे रंग के पाजामे और सफ़ेद झाग-से कुर्ते। और पंखा भी चलता हो, फिर भी वह हल्की दुलाई ज़रूर जिस्म पर ढके रहती थीं। उन्हें जाड़ा बहुत पसन्द था। जाड़े में मुझे उनके यहाँ अच्छा मालूम होता। वह हिलती-डुलती बहुत कम थीं। क़ालीन पर लेटी हैं, पीठ खुज रही है, ख़ुश्क मेवे चबा रही हैं और बस! रब्बो से दूसरी सारी नौकरानियाँ खार खाती थीं। चुड़ैल बेगम जान के साथ खाती, साथ उठती-बैठती और माशा अल्लाह! साथ ही सोती थी! रब्बो और

बेगम जान आम जलसों और मजमूओं की दिलचस्प गुफ़्तगू का मौज़ूँ थीं। जहाँ उन दोनों का ज़िक्र आया और क़हक़हे उठे। लोग न जाने क्या-क्या चुटकुले ग़रीब पर उड़ाते, मगर वह दुनिया में किसी से मिलती ही न थी। वहाँ तो बस वह थीं और उनकी खुजली!

मैंने कहा कि उस वक़्त मैं काफ़ी छोटी थी और बेगम जान पर फ़िदा। वह भी मुझे बहुत ही प्यार करती थीं। इत्तेफाक से अम्माँ आगरे गयीं। उन्हें मालूम था कि अकेले घर में भाइयों से मार-कुटाई होगी, मारी-मारी फिरूँगी, इसलिए वह हफ्ता-भर के लिए बेगम जान के पास छोड़ गयीं। मैं भी ख़ुश और बेगम जान भी ख़ुश। आख़िर को अम्माँ की भाभी बनी हुई थीं।

सवाल यह उठा कि मैं सोऊँ कहाँ? क़ुदरती तौर पर बेगम जान के कमरे में। लिहाज़ा मेरे लिए भी उनके छपरखट से लगाकर छोटी-सी पलँगड़ी डाल दी गयी। दस-ग्यारह बजे तक तो बातें करते रहे। मैं और बेगम जान चांस खेलते रहे और फिर मैं सोने के लिए अपने पलँग पर चली गयी। और जब मैं सोयी तो रब्बो वैसी ही बैठी उनकी पीठ खुजा रही थी। 'भंगन कहीं की!' मैंने सोचा। रात को मेरी एकदम से आँख खुली तो मुझे अजीब तरह का डर लगने लगा। कमरे में घुप अँधेरा। और उस अँधेरे में बेगम जान का लिहाफ़ ऐसे हिल रहा था, जैसे उसमें हाथी बन्द हो!

"बेगम जान!"

मैंने डरी हुई आवाज़ निकाली। हाथी हिलना बन्द हो गया। लिहाफ़ नीचे दब गया।

"क्या है? सो जाओ।"

बेगम जान ने कहीं से आवाज़ दी।

"डर लग रहा है।"

मैंने चूहे की-सी आवाज़ से कहा।

"सो जाओ। डर की क्या बात है? आयतलकुर्सी[1] पढ़ लो।"

"अच्छा।"

मैंने जल्दी-जल्दी आयतलकुर्सी पढ़ी। मगर 'यालमू मा बीन' पर हर दफ़ा आकर अटक गयी। हालाँकि मुझे इस वक़्त पूरी आयत याद है।

---

1. शैतान को भगाने की दुआ।

"तुम्हारे पास आ जाऊँ बेगम जान ?"

"नहीं बेटी, सो रहो।" ज़रा सख़्ती से कहा।

और फिर दो आदमियों के घुसुर-फुसुर करने की आवाज़ सुनायी देने लगी। हाय रे! यह दूसरा कौन ? मैं और भी डरी।

"बेगम जान, चोर-वोर तो नहीं ?"

"सो जाओ बेटा, कैसा चोर ?"

रब्बो की आवाज़ आयी। मैं जल्दी से लिहाफ़ में मुँह डालकर सो गयी।

सुबह मेरे ज़हन में रात के ख़ौफ़नाक नज़्ज़ारे का ख़याल भी न रहा। मैं हमेशा की वहमी हूँ। रात को डरना, उठ-उठकर भागना और बड़बड़ाना तो बचपन में रोज़ ही होता था। सब तो कहते थे, मुझ पर भूतों का साया हो गया है। लिहाज़ा मुझे ख़याल भी न रहा। सुबह को लिहाफ़ बिल्कुल मासूम नज़र आ रहा था। मगर दूसरी रात मेरी आँख खुली तो रब्बो और बेगम जान में कुछ झगड़ा बड़ी ख़ामोशी से छपरखट पर ही तय हो रहा था। और मेरी ख़ाक समझ में न आया कि क्या फ़ैसला हुआ ? रब्बो हिचकियाँ लेकर रोयी, फिर बिल्ली की तरह सपड़-सपड़ रकाबी चाटने-जैसी आवाज़ें आने लगीं, ऊँह! मैं तो घबराकर सो गयी।

आज रब्बो अपने बेटे से मिलने गयी हुई थी। वह बड़ा झगड़ालू था। बहुत कुछ बेगम जान ने किया—उसे दुकान करायी, गाँव में लगाया, मगर वह किसी तरह मानता ही नहीं था। नवाब साहब के यहाँ कुछ दिन रहा, ख़ूब जोड़े-बागे भी बने, पर न जाने क्यों ऐसा भागा कि रब्बो से मिलने भी न आता। लिहाज़ा रब्बो ही अपने किसी रिश्तेदार के यहाँ उससे मिलने गयी थी। बेगम जान न जाने देतीं, मगर रब्बो भी मजबूर हो गयी।

सारा दिन बेगम जान परेशान रहीं। उनका जोड़-जोड़ टूटता रहा। किसी का छूना भी उन्हें न भाता था। उन्होंने खाना भी न खाया और सारा दिन उदास पड़ी रहीं।

"मैं खुजा दूँ बेगम जान ?"

मैंने बड़े शौक़ से ताश के पत्ते बाँटते हुए कहा। बेगम जान मुझे गौर से देखने लगीं।

"मैं खुजा दूँ ? सच कहती हूँ!"

मैंने ताश रख दिये।

मैं थोड़ी देर तक खुजाती रही और बेगम जान चुपकी लेटी रहीं।

दूसरे दिन रब्बो को आना था, मगर वह आज भी ग़ायब थी। बेगम जान का मिज़ाज चिड़चिड़ा होता गया। चाय पी-पीकर उन्होंने सिर में दर्द कर लिया।

मैं फिर खुजाने लगी उनकी पीठ—चिकनी मेज़ की तख़्ती-जैसी पीठ। मैं हौले-हौले खुजाती रही। उनका काम करके कैसी ख़ुशी होती थी!

"ज़रा ज़ोर से खुजाओ। बन्द खोल दो।" बेगम जान बोलीं, "इधर··· ऐ है, ज़रा शाने से नीचे··· हाँ··· वाह भइ वाह! हा! हा!" वह सुरूर में ठण्डी-ठण्डी साँसें लेकर इत्मीनान ज़ाहिर करने लगीं।

"और इधर···" हालाँकि बेगम जान का हाथ ख़ूब जा सकता था, मगर वह मुझसे ही खुजवा रही थीं और मुझे उल्टा फ़ख़्र हो रहा था। "यहाँ··· ओई! तुम तो गुदगुदी करती हो··· वाह!" वह हँसीं। मैं बातें भी कर रही थी और खुजा भी रही थी।

"तुम्हें कल बाज़ार भेजूँगी। क्या लोगी ? वही सोती-जागती गुड़िया ?"

"नहीं बेगम जान, मैं तो गुड़िया नहीं लेती। क्या बच्चा हूँ अब मैं ?"

"बच्चा नहीं तो क्या बूढ़ी हो गयी ?" वह हँसीं "गुड़िया नहीं तो बनवा लेना कपड़े, पहनाना ख़ुद। मैं दूँगी तुम्हें बहुत-से कपड़े। सुना ?" उन्होंने करवट ली।

"अच्छा।" मैंने जवाब दिया।

"इधर···" उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर जहाँ खुजली हो रही थी, रख दिया। जहाँ उन्हें खुजली मालूम होती, वहाँ मेरा हाथ रख देतीं। और मैं बेख़याली में, बबुए के ध्यान में डूबी मशीन की तरह खुजाती रही और वह मुतवातिर बातें करती रहीं।

"सुनो तो··· तुम्हारी फ्राकें कम हो गयी हैं। कल दर्ज़ी को दे दूँगी, कि नयी सीं लाये। तुम्हारी अम्माँ कपड़ा दे गयी हैं।"

"वह लाल कपड़े की नहीं बनवाऊँगी। चमारों-जैसा है!" मैं बकवास कर रही थी और हाथ न जाने कहाँ-से-कहाँ पहुँचा। बातों-बातों में मुझे मालूम भी न हुआ। बेगम जान तो चुप लेटी थीं। "अरे!" मैंने जल्दी से हाथ खींच लिया।

"ओई लड़की ! देखकर नहीं खुजाती ! मेरी पसलियाँ नोचे डालती है !"

बेगम जान शरारत से मुस्करायीं और मैं झेंप गयी।

"इधर आकर मेरे पास लेट जा।"

"उन्होंने मुझे बाजू पर सिर रखकर लिटा लिया।

"अय है, कितनी सूख रही है। पसलियाँ निकल रही हैं।" उन्होंने मेरी पसलियाँ गिनना शुरू कीं।

"ऊँ !" मैं भुनभुनायी।

"ओइ ! तो क्या मैं खा जाऊँगी ? कैसा तंग स्वेटर बना है ! गरम बनियान भी नहीं पहना तुमने !"

मैं कुलबुलाने लगी।

"कितनी पसलियाँ होती हैं ?" उन्होंने बात बदली।

"एक तरफ़ नौ और दूसरी तरफ़ दस।"

मैंने स्कूल में याद की हुई हाइजिन की मदद ली। वह भी ऊटपटाँग।

"हटाओ तो हाथ··· हाँ, एक··· दो··· तीन·····"

मेरा दिल चाहा किसी तरह भागूँ··· और उन्होंने ज़ोर से भींचा।

"ऊँ !" मैं मचल गयी।

बेगम जान ज़ोर-ज़ोर से हँसने लगीं।

अब भी जब कभी मैं उनका उस वक़्त का चेहरा याद करती हूँ तो दिल घबराने लगता है। उनकी आँखों के पपोटे और वज़नी हो गये। ऊपर के होंठ पर सियाही घिरी हुई थी। बावजूद सर्दी के, पसीने की नन्हीं-नन्हीं बूँदें होंठों और नाक पर चमक रही थीं। उनके हाथ ठण्डे थे, मगर नरम-नरम—जैसे उन पर की खाल उतर गयी हो। उन्होंने शाल उतार दी थी और कारगे के महीन कुर्ते में उनका जिस्म आटे की लोई की तरह चमक रहा था। भारी जड़ाऊ सोने के बटन गरेबान के एक तरफ झूल रहे थे। शाम हो गयी थी और कमरे में अँधेरा घुप हो रहा था। मुझे एक नामालूम डर से दहशत-सी होने लगी। बेगम जान की गहरी-गहरी आँखें ! मैं रोने लगी दिल में। वह मुझे एक मिट्टी के खिलौने की तरह भींच रही थीं। उनके गरम-गरम जिस्म से मेरा दिल बौलाने लगा। मगर उन पर तो जैसे कोई भुतना सवार था और मेरे दिमाग़ का यह हाल कि न चीख़ा जाये और न रो सकूँ।

थोड़ी देर के बाद वह पस्त होकर निढाल लेट गयीं। उनका चेहरा फीका

और बदरौनक़ हो गया और लम्बी-लम्बी साँसें लेने लगीं। मैं समझी कि अब मरीं यह। और वहाँ से उठकर सरपट भागी बाहर।

शुक्र है कि रब्बो रात को आ गयी और मैं डरी हुई जल्दी से लिहाफ़ ओढ़ सो गयी। मगर नींद कहाँ ? चुप घण्टों पड़ी रही।

अम्माँ किसी तरह आ ही नहीं रही थीं। बेगम जान से मुझे ऐसा डर लगता था कि मैं सारा दिन मामाओं के पास बैठी रहती। मगर उनके कमरे में कदम रखते दम निकलता था। और कहती किससे, और कहती ही क्या, कि बेगम जान से डर लगता है ? तो यह बेगम जान मेरे ऊपर जान छिड़कती थीं···

आज रब्बो में और बेगम जान में फिर अनबन हो गयी। मेरी क़िस्मत की खराबी कहिए या कुछ और, मुझे उन दोनों की अनबन से डर लगा। क्योंकि फ़ौरन ही बेगम जान को ख़याल आया कि मैं बाहर सर्दी में घूम रही हूँ और मरूँगी निमोनिया में !

"लड़की क्या मेरा सिर मुँडवायेगी ? जो कुछ हो-हवा गया और आफ़त आयेगी।"

उन्होंने मुझे पास बिठा लिया। वह ख़ुद मुँह-हाथ सिलप्ची में धो रही थीं। चाय तिपाई पर रखी थी।

"चाय तो बनाओ। एक प्याली मुझे भी देना।" वह तौलिया से मुँह ख़ुश्क करके बोलीं, "मैं ज़रा कपड़े बदल लूँ।"

वह कपड़े बदलती रहीं और मैं चाय पीती रही। बेगम जान नाइन से पीठ मलवाते वक़्त अगर मुझे किसी काम से बुलातीं तो मैं गर्दन मोड़े-मोड़े जाती और वापस भाग आती। अब जो उन्होंने कपड़े बदले तो मेरा दिल उलटने लगा। मुँह मोड़े मैं चाय पीती रही।

"हाय अम्माँ !" मेरे दिल ने बेकसी से पुकारा, "आख़िर ऐसा मैं भाइयों से क्या लड़ती हूँ जो तुम मेरी मुसीबत···"

अम्माँ को हमेशा से मेरा लड़कों के साथ खेलना नापसन्द है। कहो भला लड़के क्या शेर-चीते हैं जो निगल जायेंगे उनकी लाडली को ? और लड़के भी कौन, खुद भाई और दो-चार सड़े-सड़ाये ज़रा-ज़रा-से उनके दोस्त ! मगर नहीं, वह तो औरत ज़ात को सात तालों में रखने की कायल और यहाँ बेगम जान

की वह दहशत, कि दुनिया-भर के गुण्डों से नहीं। बस चलता तो उस वक़्त सड़क पर भाग जाती, पर वहाँ न टिकती। मगर लाचार थी। मजबूरन कलेजे पर पत्थर रखे बैठी रही।

कपड़े बदल, सोलह सिंगार हुए, और गरम-गरम ख़ुशबुओं के अतर ने और भी उन्हें अंगारा बना दिया। और वह चलीं मुझ पर लाड उतारने।

"घर जाऊँगी।"

मैंने उनकी हर राय के जवाब में कहा और रोने लगी।

"मेरे पास तो आओ, मैं तुम्हें बाज़ार ले चलूँगी, सुनो तो।"

मगर मैं खली की तरह फैल गयी। सारे खिलौने, मिठाइयाँ एक तरफ़ और घर जाने की रट एक तरफ़।

"वहाँ भैया मारेंगे चुड़ैल!" उन्होंने प्यार से मुझे थप्पड़ लगाया।

'पड़े मारें भैया,' मैंने दिल में सोचा और रूठी, अकड़ी बैठी रही।

"कच्ची अमियाँ खट्टी होती हैं बेगम जान!"

जली-कटी रब्बो ने राय दी।

और फिर उसके बाद बेगम जान को दौरा पड़ गया। सोने का हार, जो वह थोड़ी देर पहले मुझे पहना रही थीं, टुकड़े-टुकड़े हो गया। महीन जाली का दुपट्टा तार-तार। और वह माँग, जो मैंने कभी बिगड़ी न देखी थी, झाड़-झंखाड़ हो गयी।

"ओह! ओह! ओह! ओह!" वह झटके ले-लेकर चिल्लाने लगीं। मैं रपटी बाहर।

बड़े जतनों से बेगम जान को होश आया। जब मैं सोने के लिए कमरे में दबे पैर जाकर झाँकी तो रब्बो उनकी कमर से लगी जिस्म दबा रही थी।

"जूती उतार दो।" उसने उनकी पसलियाँ खुजाते हुए कहा और मैं चुहिया की तरह लिहाफ़ में दुबक गयी।

सर सर फट खच!

बेगम जान का लिहाफ़ अँधेरे में फिर हाथी की तरह झूम रहा था।

"अल्लाह! आँ!" मैंने मरी हुई आवाज़ निकाली। लिहाफ़ में हाथी फुदका और बैठ गया। मैं भी चुप हो गयी। हाथी ने फिर लोट मचाई। मेरा रोआँ-रोआँ

काँपा। आज मैंने दिल में ठान लिया कि ज़रूर हिम्मत करके सिरहाने का लगा हुआ बल्ब जला दूँ। हाथी फिर फड़फड़ा रहा था और जैसे उकड़ूँ बैठने की कोशिश कर रहा था। चपड़-चपड़ कुछ खाने की आवाज़ें आ रही थीं--जैसे कोई मज़ेदार चटनी चख रहा हो। अब मैं समझी! यह बेगम जान ने आज कुछ नहीं खाया। और रब्बो मुई तो है सदा की चट्टू! ज़रूर यह तर माल उड़ा रही है। मैंने नथुने फुलाकर सूँ-सूँ हवा को सूँघा। मगर सिवाय अतर, सन्दल और हिना की गरम-गरम ख़ुशबू के और कुछ न महसूस हुआ।

लिहाफ़ फिर उमँडना शुरू हुआ। मैंने बहुतेरा चाहा कि चुपकी पड़ी रहूँ, मगर उस लिहाफ़ ने तो ऐसी अजीब-अजीब शक्लें बनानी शुरू कीं कि मैं लरज गयी। मालूम होता था, गों-गों करके कोई बड़ा-सा मेंढक फूल रहा है और अब उछलकर मेरे ऊपर आया!

"आ···न···अम्माँ!" मैं हिम्मत करके गुनगुनायी, मगर वहाँ कुछ सुनवाई न हुई और लिहाफ़ मेरे दिमाग़ में घुसकर फूलना शुरू हुआ। मैंने डरते-डरते पलँग के दूसरी तरफ पैर उतारे और टटोलकर बिजली का बटन दबाया। हाथी ने लिहाफ़ के नीचे एक क़लाबाज़ी लगायी और पिचक गया। क़लाबाज़ी लगाने में लिहाफ़ का कोना फुट-भर उठा--

अल्लाह! मैं गड़ाप से अपने बिछौने में!!!

ज़रूरत

मेरा दिल हथौड़े की चोटों की तरह धड़क रहा था। फूलों और अम्बर की मदहोशकुन ख़ुशबू दिलो-दिमाग़ को बुरी तरह झिंझोड़ रही थी। लड़कियाँ-बालियाँ दूल्हा को अजला-ए-अरूसी की तरफ़ ला रही थीं। कुँवारियाँ चहक रही थीं, ब्याहियाँ ज़ेरे-लब मुस्करा रही थीं।

और मैं आनेवाली घड़ियों के इन्तज़ार में थरथर काँप रही थी। सुहागरात हर दोशीज़ा के ख़्वाबों की ताबीर होती है। मेरे हाथ बर्फ़ की डलियों की तरह सर्द हो रहे थे। पेशानी पर पसीना फूट रहा था।

दरवाज़ा खुला और लड़कियों के क़हक़हों के साथ ही वह एक झटके से